THE ECONOMIC TIMES

Date: 29-06-16

A chilling argument for cleaner energy

It is shocking and wholly unacceptable that air pollution results in an estimated 1.6 million premature deaths annually in India, according to the International Energy Agency (IEA). Given the alarming links between fuel choice, air pollution and human health, with the poor most affected, it is vital that we have proactive policy in place to tackle the negative externalities of fossil fuels and boost clean energy usage across the board.

Evidently, the harmful externalities of fossil fuels have not been adequately factored into their retail prices.

The actual cost shows up as morbidity and mortality. We have traditionally preferred to distort energy prices with populism and giveaways. Rightly, energy taxes and levies have lately been raised in India to better address the challenges of global warming and climate change.

Rising pollution levels are not inevitable as we address energy poverty. The IEA report does stress that a small increase in energy investment can sharply reduce the casualty figures related to outdoor and indoor air pollution. It adds that energy production and use — mostly from unregulated or poorly regulated sources — and inefficient fuel consumption raise pollution levels. Hence the pressing need to boost energy efficiency, tighten emission norms and substitute traditional fuels like biomass.

The focus needs to be on reducing small particulate matter (PM2.5) emissions. It is welcome that the Centre has brought forward the date for ultra-low sulphur automotive fuels — Bharat Stage VI — to April 2020, and has opted to sidestep BS V norms. A relatively modest upfront investment in oil refining and retrofitting can

significantly reduce PM levels. The plan to boost supply of LPG cylinders for both the poor and non-poor is most welcome.

Next, we need to shore up usage of natural gas, by far the cleanest fossil fuel. Also, we need a nation-wide plan to step-up thermal efficiency levels in brownfield coal-fired power plants by better allocating resources for the purpose, including by tapping multilateral sources. Our energy systems do need to be cleaner and greener.

THE TIMES OF INDIA

Date: 29-06-16

Scrap unjust law:

Fresh petition against Section 377 bolsters fight for LGBT rights

In a fresh boost to the fight for the rights of lesbian, gay, bisexual and transgender people, prominent members of the LGBT community have filed a petition with the Supreme Court against Section 377 of the Indian Penal Code that criminalises homosexual sex. Petitioners dancer N S Johar, journalist Sunil Mehra, chef Ritu Dalmia, hotelier Aman Nath and business executive Ayesha Kapur have sought the quashing of this law on the grounds that it violates their sexual autonomy, privacy and dignity. This is the first time people who are directly affected by Section 377 have challenged its constitutional validity while openly asserting their sexual orientation.

The latest petition comes on top of others filed by Naz Foundation and gay rights sympathisers such as filmmaker Shyam Benegal that are already pending before the court. Together they mark a growing social consensus against Section 377 making criminals out of consenting homosexual adults. This archaic penal provision has no place in 21st century India. British law, from which IPC was originally derived, has long decriminalised homosexual sex. Even neighbouring China made consensual homosexuality legal in 1997.

In India, following a brief period of reprieve after the Delhi high court's 2009 decision to decriminalise homosexuality, the Supreme Court in December 2013 had upheld the constitutional validity of Section 377. It was only this February that a curative petition was referred to a five-judge bench by the apex court. Meanwhile, politicians cutting across party lines are increasingly voicing their support for decriminalising homosexuality. This includes Congress's Shashi Tharoor, BJP's Arun Jaitley and Ram Madhav, and AAP and the Left parties. Taken together, it's high time authorities admit that Section 377 is a legal abomination and scrap it. The state has no business dictating the sexual behaviour of consenting adults.

राष्ट्रीय सहारा

Date: 28-06-16

सेक्युलर मुल्क में आस्था केंद्रित बैंकिंग

सुभाष गाताडे

भारत में जल्द ही "इस्लामिक बैंकिंग' की शुरुआत होगी। मालूम हो कि सऊदी अरब स्थित इस्लामिक डेवलपमेंट बैंक/आईडीबी/ अपने कामकाज की शुरुआत गुजरात के अहमदाबाद से करेगा। आप कह सकते हैं कि अप्रैल माह में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की सऊदी अरब की यात्रा का यह एक हासिल है। उनके साथ गए शिष्टमंडल ने इसे लेकर एक विस्तृत करारनामा बैंक के साथ किया है। मालूम हो कि जनवरी माह में रिजर्व बैंक ने शरिया अनुकूल सूदविहीन या इस्लामिक बैंकिंग की शुरुआत के लिए हरी झंडी दिखाई है। "मीडियम टर्म पाथ फॉर फाइनांशियल इन्क्लुजन' के नाम पर बनी आरबीआई की कमेटी, जिसकी अगुआई दीपक मोहंती ने की थी, ने पारंपरिक बैंकों में भी "सूदहीन खिड़कियां' खोलने की सिफारिश की थी। कहा गया था कि इससे न केवल अर्थव्यवस्था में गति आएगी बल्कि "वित्तीय समावेशन' को भी बढ़ावा देगा। आकलन किया गया था कि वर्ष 2015 में कुल इस्लामिक वित्तीय परिसंपत्तियां 2 ट्रिलियन के करीब थीं, जो एक दशक के दौरान दस गुना बढ़ी थीं, और तमाम मुल्कों "पारंपरिक वित्त संसाधनों' की तुलना में तेज गति से बढ़ रही थीं। प्रश्न उठता है कि अन्य बैंकों से इस्लामिक बैंक किस मामले में अलग समझे जाते हैं? दरअसल इस्लामिक बैंक अलग-अलग वित्तीय उत्पाद ऑफर करते हैं जैसे सुकूक बांड या इटिशी फंड, जहां सूद नहीं लिया जाता क्योंकि इस्लाम में सूदखोरी पर प्रतिबंध है। निवेश पर आधारित परिसंपत्तियों के परफामेंस के आधार पर ही उनका निपटारा किया जाता है, जिसमें मुनाफा और घाटा, दोनों साझा किया जाता है। ऐसी आर्थिक गतिविधि जो "पाप' समझी जाती है, जैसे सट्टेबाजी या अल्कोहल तथा अन्य नशीली चीजों में पैसे का निवेश नहीं किया जाता है। दिलचस्प है कि पिछली सरकार के दिनों में शरिया अनुकूल फंड के लिए रिजर्व बैंक ने अनुमति दी थी, मगर उसने विशुद्ध इस्लामिक बैंकिंग के लिए रजामंदी नहीं दी थी। उसकी एक रिपोर्ट के मुताबिक एक ऐसी पण्राली जिसमें सूद लिया-दिया नहीं जाता है, वह अस्तित्वमान कानूनों से मेल नहीं खाती। रिजर्व बैंक का मानना था कि भारत में बैंकों के संचालन के लिए बैंकों को कर्ज लेने पड़ते हैं, जिस पर उन्हें सूद देना पड़ता है। इसके अलावा बैंकों को रिजर्व बैंक के पास "कैश रिजर्व रेश्यो' के तहत नगदी जमा करनी पड़ती है, जिस पर उन्हें सूद मिलता है। इस वजह से बैंक ने सरकार को सलाह दी थी कि अगर इस्लामिक बैंकिंग को अनुमति देनी हो तो उसे इसी के अनुरूप विधेयक लाना पड़ेगा। अब उपरोल्लेखित दीपक मोहन्ती रिपोर्ट को पलटें तो यही कहा जा सकता है कि आरबीआई ने अपना रुख बदला है। पड़ोसी मुल्क पाकिस्तान का उदाहरण काबिलेगौर है, जहां अस्सी के दशक में जब

इस्लामीकरण की बढ़ती प्रक्रिया में सूद आधारित बैंक पण्राली को शरिया आधारित बैंक पण्राली से पुनस्र्थापित करने की बात चली तो सुप्रीम कोर्ट का फैसला नजीर बना। अदालत ने सूद आधारित आधुनिक बैंक पण्राली की हिमायत करते हुए स्पष्ट कहा कि अगर शरिया आधारित बैंकों को बढ़ावा दिया गया तो देश की अर्थव्यवस्था के पास अपने कज्रे चुकाने के लिए पैसे नहीं होंगे। प्रश्न उठता है कि एक ऐसी योजना, जिस पर खुद इस्लामिक देशों में भी प्रश्नचिह्न खड़े किए गए हों, की नए सिरे से पड़ताल की आवश्यकता है या नहीं। निश्चित ही है, यह समझने की जरूरत है कि एक ऐसे मुल्क में जहां गैर-मुस्लिमों का बहुमत है, जहां मुसलमानों की माली हालत एक समुदाय के तौर पर बहुत खराब है, जो अपने से किसी बैंकिंग पण्राली को मजबूत आधार नहीं दे सकते, वहां ऐसी कोई भी योजना पहले से अलगाव में पड़े अल्पसंख्यक समुदाय के अलगाव को और बढ़ावा देगी। दूसरे, चूंकि इस्लामिक बैंक में निवेश से आम बैंकों की तरह सूद नहीं मिलता है, मुनाफा और घाटा, दोनों साझा करने की बात होती है, लिहाजा इसका असर यही होगा कि मुस्लिम आबादी का एक हिस्सा जो अन्य बैंकों के बजाय ऐसे में निवेश करेगा तो उसे अपनी मेहनत की कमाई में वाजिब बढ़ोतरी का लाभ भी नहीं मिलेगा। तीसरे, ऐसी कोई योजना जो किसी खास संप्रदाय की आस्था संबंधी मान्यताओं की बुनियाद पर शुरू की जा रही हो, वह धर्मनिरपेक्षता के बुनियादी मूल्यों के प्रति एक समझौता होगी, जो दूरगामी तौर पर अधिक समस्याओं को जन्म देगी। बहरहाल, इस्लामिक बैंकिंग के संदर्भ में समझना जरूरी है कि दरअसल, इस्लाम के अंदर हावी होती रूढ़िवादी धारा का परिणाम ही है कि विगत दो-तीन दशकों से ही फिजां बदल रही है|

Date: 28-06-16

ढांचागत विकास रामबाण

वैश्विक मंदी के दौर को थामने के लिए ढांचागत क्षेत्र का विकास बेहद महत्त्वपूर्ण है। विश्वभर में इस क्षेत्र में अच्छे-खासे निवेश की दरकार है। भारत में भी आगामी दस वर्षो के दौरान ढांचागत क्षेत्रमें 1.5 ट्रिलियन डॉलर के निवेश की जरूरत होगी। चीन में एशिया इंफ्रास्क्ट्रचर इंवेस्टमेंट बैंक के बोर्ड ऑफ गवनर्स की बैठक में वित्त मंत्री अरुण जेटली ने कहा कि ढांचागत क्षेत्र में प्रयासों में तेजी लाकर ही भारत बीते समय में नियंतण्र मंदी के

दुष्प्रभावों से खुद को महफूज रख सका। आर्थिक विकास, रोजगार सृजन और गरीबी के दंश से मुक्ति दिलाने में ढांचागत क्षेत्र का महत्त्व सर्वविदित है। इस करके मोदी सरकार ढांचागत क्षेत्रमें तमाम महत्त्वाकांक्षी योजनाओं को क्रियान्वित करने की दिशा में अग्रसर है। वर्ष 2019 तक सात हजार से ज्यादा गांवों को संपर्क मागरे के जरिए जोड़े जाने का मंसूबा बांधा गया है। ग्रामीण इलाकों में वृहद् स्वच्छता अभियान शुरू किया गया है। इसी वर्ष दस हजार किमी. लंबे राजमागरे का निर्माण किया जाना है। सौ वर्ष से ज्यादा पुरानी हो चुकी रेल पण्राली को चुस्त-दुरुस्त बनाए रखने की गरज से इसका अत्याधुनिकीकरण किए जाने की जरूरत भी शिद्दत से महसूस की जा रही है। इसके अलावा, हवाई अड्डे, बंदरगाह पत्तन, बिजली संयंत्र आदि तमाम क्षेत्र हैं, जिनके निर्माण और विकास की ओर ध्यान दिया जाना जरूरी है। ढांचागत क्षेत्र में धन मुहैया कराने के लिए इंडिया इंफ्रास्क्ट्रचर इंवेस्टमेंट फंड बनाया गया है। अलबत्ता, इसमें सरकार की हिस्सेदारी बनिस्बत कम रखी गई है। दरअसल, सरकार की अरसे से कोशिश है कि ढांचागत क्षेत्रमें निजी भागीदारी को ज्यादा से ज्यादा प्रोत्साहित किया जाए। अनुभव सिद्ध है कि इस प्रकार की भागीदारी से निर्माण परियोजनाओं में लागत-आधिक्य नियत समय-आधिक्य जैसी अड़चनें मुंह नहीं उठाने पातीं। नियंतण्र मंदी की प्रतिकूलताओं से बचे रहने के अलावा भारत के लिए ढांचागत क्षेत्रका विकास एक अन्य कारण से भी महत्त्वपूर्ण है। यह कि इस क्षेत्र में विकास के बल पर उसके विकसित देशों की कतार में शुमार होने की संभावनाएं प्रबल हैं। ढांचागत क्षेत्र में परियोजनाओं के सफल क्रियान्वयन का एक और फायदा यह होता है कि निवेश पर जोखिम कम से कम हो जाता है।

हिन्दुस्तान
तरक्की को चाहिए नया नजरिया

Date: 28-06-16

काले धन का खेल

यह अच्छी खबर है कि आयकर विभाग ने विदेश में जमा लगभग 13,000 करोड़ रुपये के काले धन का पता लगाया है और यह काला धन विदेशी बैंकों में रखने वालों पर कार्रवाई शुरू की है। लेकिन इस खबर के साथ कई सवाल भी जुड़े हुए हैं। 8,186 करोड़ रुपये का पता तो उस जानकारी के आधार पर लगा, जो सन 2011 में फ्रांस सरकार ने भारत सरकार को दी थी और जिसमें हांगकांग ऐंड शंघाई बैंकिंग कॉरपोरेशन (एचएसबीसी) बैंक में भारतीयों के कुछ खातों की जानकारी थी। 700 भारतीयों के 5,000 करोड़ रुपये की जानकारी भी

एचएसबीसी के ही खातों से जुड़ी थी, जो खोजी पत्रकारों के एक अंतरराष्ट्रीय समूह ने सन 2013 में खोज निकाले थे।

जाहिर है, विदेशों में जो भारतीय काला धन होने का अनुमान है, उसका यह काफी छोटा हिस्सा होना चाहिए। यह जानकारी भी काफी पुरानी है और इस पर कार्रवाई में भी काफी वक्त लगा है। ऐसे में, विदेश में काला धन रखने वालों ने बाकी पैसे का इंतजाम अच्छी तरह कर लिया होगा। इन दोनों ही सूचियों को हासिल करने में हमारी सरकारी एजेंसियों की कोई भूमिका नहीं है, वे दूसरों ने हमें सौंपी हैं। इस बीच भारतीय एजेंसियों ने विदेशों में रखे काले धन की खोज के लिए कोई बड़ी मुहिम नहीं चलाई है।

भारत में काले धन के खिलाफ शिकंजा कस रहा है, लेकिन इसकी गति काफी धीमी है। काले धन को लेकर पिछले दिनों बनाए गए कानून ने उसके खिलाफ की जाने वाली कार्रवाई को ज्यादा प्रभावशाली बनाने का रास्ता आसान कर दिया है, लेकिन इसके खिलाफ जंग छेड़े जाने की जरूरत है। यह विचार काफी सनसनीखेज लगता है कि विदेशों के बैंकों में भारत का लाखों करोड़ों रुपये का काला धन पड़ा है, लेकिन वास्तविकता यह है कि ज्यादातर काला धन पड़ा नहीं रहता, बल्कि अलग-अलग तरीकों से भारतीय अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा में आवाजाही करता रहता है। इसका सबसे बड़ा तरीका काले धन के ठिकानों से फर्जी कंपनियों के जाल के जरिये भारत के शेयर बाजार में निवेश है। शेयर बाजार के जरिये मुनाफा कमाकर यह पैसा वापस विदेश जाकर इसी चक्रव्यूह के जरिये फिर भारत आता रहता है। इसके अलावा, रियल एस्टेट जैसे क्षेत्रों में भी यह काला पैसा बड़े पैमाने पर इस्तेमाल होता है।

इस दुश्चक्र को रोकने का सबसे बड़ा तरीका यही हो सकता है कि भारत में काले धन के पैदा होने और अर्थव्यवस्था में इनके इस्तेमाल होने पर रोक लगे। अगर भारत में लोग काला पैसा बनाते रहे, तो उसे विदेश जाने व फिर भारत आने से रोकना बहुत मुश्किल है, क्योंकि काले धन का सुरक्षित ठिकाना बने सभी देशों को काले धन की अर्थव्यवस्था छोड़ने या उसे नियंत्रित करने के लिए मजबूर करना बहुत मुश्किल है। इसी तरह, अमेरिका जैसा देश तो अंतरराष्ट्रीय बैंकों पर काले धन का कारोबार न करने के लिए दबाव डाल सकता है, लेकिन भारत के लिए यह बहुत आसान नहीं है।

इसलिए अपने देश में काले धन के स्रोत को बंद करना ही ज्यादा प्रभावशाली तरीका है। अगर सरकारी कामकाज में पारदर्शिता और चुस्ती आ जाए और रियल एस्टेट जैसे कुछ क्षेत्रों की सफाई पर विशेष जोर दिया जाए, तो काले पैसे की अर्थव्यवस्था को नियंत्रित किया जा सकता है। अच्छी बात यह है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने काले धन को बाहर लाने के लिए तारीख समेत चेतावनी दी है। सबसे बड़ी जरूरत राजनीति में काले धन को नियंत्रित करने की है, क्योंकि हमारी राजनीति बिना हिसाब-किताब के पैसे से ही चलती है। जो पार्टियों और नेताओं को काला पैसा चंदे के रूप में देंगे, उन्हें काले धन का कारोबार करने से कौन रोकेगा?

जनसत्ता

Date: 28-06-16

दूसरा दरवाजा

जिनके पास जनसंहार के हथियार हैं या ऐसे हथियार बनाने का जिनका इरादा हो उन्हें मिसाइल व चालक-रहित विमान आदि की तकनीक देने पर रोक लगाना एमटीसीआर का घोषित उद्देश्य रहा है।

एनएसजी में शामिल होने की भारत की सारी कोशिशें पिछले दिनों नाकाम साबित हुईं, जब दक्षिण कोरिया की राजधानी सोल में हुई एसएसजी की बैठक में सदस्यता का उसका आवेदन खारिज कर दिया गया। अलबत्ता एनएसजी के अड़तालीस में से अड़तीस सदस्य भारत के समर्थन में थे। लेकिन एक दूसरी बहुपक्षीय निर्यात व्यवस्था का दरवाजा भारत के लिए खुल गया है। भारत सोमवार को एमटीसीआर यानी मिसाइल तकनीक नियंत्रण व्यवस्था का पूर्ण सदस्य बन गया। इस तरह इस समूह के सदस्यों की संख्या पैंतीस तक पहुंच गई है। इसे स्वाभाविक ही भारत की एक अहम कूटनीतिक उपलब्धि के तौर पर देखा

जा रहा है। एमटीसीआर में हिस्सेदारी का सामरिक महत्त्व तो है ही, वैश्विक शांति के मामलों में भागीदारी के लिहाज से भी है। एमटीसीआर का गठन मिसाइल तकनीक के प्रसार पर निगरानी और नियंत्रण के लिए किया गया था। जिनके पास जनसंहार के हथियार हैं या ऐसे हथियार बनाने का जिनका इरादा हो उन्हें मिसाइल व चालक-रहित विमान आदि की तकनीक देने पर रोक लगाना एमटीसीआर का घोषित उद्देश्य रहा है। इसकी सदस्यता का मतलब है, जवाबदेही की एक अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में शामिल होना और भारत की साख बढ़ना। इसी के साथ एमटीसीआर की सदस्यता का एक लाभ यह भी बताया जा रहा है कि भारत को अत्याधुनिक मिसाइल तकनीक पाने में आसानी होगी। यूपीए सरकार के दौरान 2005 में अमेरिका के साथ हुए एटमी करार के बाद से ही भारत एनएसजी, एमटीसीआर, आस्ट्रेलिया समूह और वेसेनार अरेंजमेंट जैसी निर्यात नियंत्रण व्यवस्थाओं में शामिल होने का प्रयास करता रहा है। ये समूह परमाणु, जैविक तथा रासायनिक हथियारों व उनसे जुड़ी प्रौद्योगिकी का नियमन करते हैं। यह गौरतलब है कि चीन एमटीसीआर का सदस्य नहीं है, जिसने एनएसजी में भारत के प्रवेश के आवेदन का खुल कर विरोध किया। पर इसी के साथ यह भी ध्यान में रहना चाहिए कि एमटीसीआर कोई वैधानिक संधि नहीं है, जो अपने सदस्य देशों पर कोई बाधता लागू कर सके। एनएसजी के दिशा-निर्देश मिसाइल तकनीक के निर्यात की बाबत सदस्य देशों व गैर-सदस्य देशों के बीच कोई फर्क नहीं करते। इसके अलावा, ये दिशा-निर्देश ऐसी तकनीक हासिल करने के लिए सदस्य देश को विशेष रूप से हकदार नहीं बनाते, न ही सदस्य देशों पर यह जिम्मेदारी डालते हैं कि वे अन्य सदस्य देशों को ऐसी चीजें बेचें ही। इसलिए जहां तक मिसाइल तकनीक हासिल करने या बाहरी मदद से उसका विकास करने का सवाल है, एमटीसीआर की सदस्यता मात्र से भारत की स्थिति में कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा। अलबत्ता जब भारत एमटीसीआर के तहत आने वाली सामग्री व तकनीक की बाबत निर्यात की अपनी उपयुक्त या अपेक्षित नीति घोषित करेगा, तो वह नीति इस तर्क का आधार बनेगी कि भारत को ऐसी सामग्री व तकनीक बेचने में उनके प्रसार का खतरा नहीं है। एमसीटीआर में भारत के प्रवेश को एनएसजी से जुड़ी उसकी नाकामी के बरक्स किसी हद तक भरपाई के तौर पर देखा जा रहा है। पर एमसीटीआर की सदस्यता और पहले भी मिल सकती थी, इटली के एतराज के चलते वह रुकी हुई थी। वर्ष 2015 तक एमसीटीआर का सदस्य बनने के भारत के प्रयासों पर इटली ने अड़ंगा लगा रखा था। इसलिए कि हत्या के आरोपी उसके दो मरीनों में से एक भारत में हिरासत में था। पिछले

महीने वह वापस लौटा, तब जाकर इटली ने हामी भरी, और फिर भारत की सदस्यता को हरी झंडी मिल गई, उसके आवेदन पर सदस्य देशों में से किसी ने भी विरोध नहीं जताया।

लोकपाल का दायरा

विचित्र है कि सरकार लोकपाल की नियुक्ति पर तो हाथ पर हाथ धरे बैठी है, पर वह तमाम एनजीओ को लोकपाल की जांच के दायरे में लाने के लिए तत्पर है।

पिछली सरकार के समय ही लोकपाल कानून संसद से पारित हो गया था। पर हैरानी की बात है कि लोकपाल संस्था का गठन आज तक नहीं हो पाया है। राजग सरकार को दो साल हो गए। वह लोकपाल की नियुक्ति में भले आनाकानी करती रही हो, पर लोकपाल का दायरा बढ़ाने को जरूर उत्साहित है। उसके ताजा फैसले के मुताबिक विदेशी व घरेलू, दोनों तरह के स्रोतों से वित्तपोषित सभी गैर-सरकारी संगठन (एनजीओ) लोकपाल की जांच के दायरे में आएंगे। कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के हाल में अधिसूचित नियमों के अनुसार, सरकारी अनुदान के तौर पर दो करोड़ से अधिक की राशि तथ विदेशी दान के रूप में दस लाख रुपए से अधिक राशि प्राप्त करने वाले एनजीओ के खिलाफ भ्रष्टाचार की शिकायत मिलेगी, तो लोकपाल उसकी जांच कर सकेगा। लोक-हित के दावे के साथ काम कर रही संस्थाओं को जवाबदेह बनाने का मकसद अपने आप में एक नेक मकसद है। पर सरकार का इरादा कहीं एनजीओ पर शिकंजा कसना और उनके लिए काम करना अव्यावहारिक बना देना तो नहीं है! विचित्र है कि सरकार लोकपाल की नियुक्ति पर तो हाथ पर हाथ धरे बैठी है, पर वह तमाम एनजीओ को लोकपाल की जांच के दायरे में लाने के लिए तत्पर है। नए नियम के मुताबिक एनजीओ और उनके शीर्ष कार्यकारियों को प्रस्तावित भ्रष्टाचार निवारण निकाय के समक्ष आय व परिसंपत्तियों का ब्योरा दायर करना होगा। पर क्या यही प्रावधान लोकपाल की जांच के दायरे में आने वाले सभी लोगों के लिए किया गया है? सरकार इस मामले में बहुत उत्साह में है तो कंपनी अधिनियम के तहत पंजीकृत कंपनियों को लोकपाल की जांच से बाहर रहने की छूट क्यों! लोकपाल की परिकल्पना शीर्ष स्तर के भ्रष्टाचार के खिलाफ कार्रवाई के लिए की गई थी। इसके पीछे यह सोच थी कि अगर शीर्ष स्तर पर भ्रष्टाचार

रोक दिया जाए, तो उसका असर व्यवस्था के सभी सोपानों पर पड़ेगा। लोकपाल कारगर रूप से काम कर सके, इसके लिए भी जरूरी है कि उसके दायरे को अनावश्यक रूप से बहुत फैलाया न जाए। आखिर भ्रष्टाचार निरोधक दूसरी एजेंसियां, जो पहले से ही मौजूद हैं, वे किसलिए हैं? जरूरत इन सभी को स्वायत्त तथा अधिक सक्षम बनाने की है। विपक्ष में रहते हुए भाजपा सीबीआइ को स्वायत्त करने की वकालत करती थी, पर आज सीबीआइ का वही हाल है जो यूपीए के समय था। सभी राज्यों में लोकायुक्त नहीं हैं, जहां हैं भी, शिकायतों की जांच कराने के लिए उन्हें संबंधित राज्य सरकार का मुंह जोहना पड़ता है। उनके संसाधन बहुत सीमित हैं; उनकी भूमिका सिफारिशी होकर रह गई है। जो एनजीओ अनुदान लेते हैं उनकी पारदर्शिता सुनिश्चित किया जाना जरूरी है। पर पीपीपी मॉडल के तहत काम करने वाली कंपनियों को नियंत्रक एवं महा लेखा परीक्षक की जांच से बाहर रहने की छूट क्यों होनी चाहिए, जबकि इस मॉडल के अंतर्गत संबंधित परियोजना में काफी सरकारी धन भी लगा होता है? और अगर जवाबदेही सुनिश्चित करने की ही बात है, तो राजनीतिक दलों को सूचना आयोग के दायरे से बाहर क्यों होना चाहिए? वे अपनी आय के स्रोतों और व्यय के हिसाब को आरटीआइ के तहत लाने को राजी क्यों नहीं हो रहे हैं? सरकार इस मामले में पहल क्यों नहीं करती?